ओ३म्-सुप्रभा

वैदिक सभ्यता-संस्कृति तथा राष्ट्रीय एकता की पोषक पत्रिका

ओ३म् क्रतो स्मर ।

वर्ष–6, अंक–9 | मई 2013 | वैशाख

सृष्टि संवत् 1960853114 | विक्रमी संवत् 2070 | दयानन्दाब्द 190

सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती । –अथर्ववेद 18-1-20

परमात्मा ने मनुष्य के लिए वेदवाणी को सूर्य के प्रकाश के समान संसार में प्रकट किया है ।

सम्पादक

मूलचन्द गुप्त

ओम् प्रतिष्ठान, कुसुमालय, बी–1/27, रघुनगर, पंखा रोड, नई दिल्ली–110045

ओ३म्

ओ३म्-सुप्रभा

वैदिक सभ्यता-संस्कृति तथा राष्ट्रीय एकता की पोषक पत्रिका

• *परामर्श*

डॉ० धर्मपाल आर्य
(पूर्व कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार)
ए/एच-16, शालीमार बाग,
दिल्ली-110088
दूरभाष-011-27472014
011-27471776

• *सम्पादक*

मूलचन्द गुप्त
(पूर्व प्रधान आर्यसमाज दीवानहाल दिल्ली)

• *प्रकाशक*

मूलचन्द गुप्त,
अध्यक्ष, **ओम्-प्रतिष्ठान**
कुसुमालय, बी-1/27, रघुनगर,
पंखा रोड, नई दिल्ली-110045
दूरभाष-9650886070
011-25394083
ई-मेल-Ompratisthan@gmail.com

ओ३म्-सुप्रभा में प्रकाशित लेखों के सभी विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है । वे विचार लेखक के अपने हैं ।

प्रकाशक-मुद्रक-स्वामी-मूलचन्द गुप्त द्वारा सम्पादित, तथा वैदिक प्रेस, 995/51, गली नं० 17, कैलाशनगर, दिल्ली-31 (फोन-22081646) से मुद्रित कराकर, ओम् प्रतिष्ठान, कुसुमालय, बी-1/27, रघुनगर, पंखा रोड, नई दिल्ली- 45, से प्रकाशित किया । न्यायक्षेत्र-दिल्ली

उद्देश्य

✧ वैदिक सभ्यता, संस्कृति तथा राष्ट्रीय एकता का पोषण करना, वैदिक विचार-धारा के अनुसार मानव-निर्माण करना, समरस और समेकित समाज का संगठन करना, विश्व भर में सुख और शान्ति की स्थापना करने का प्रयास करना **ओम्-प्रतिष्ठान** का मुख्य उद्देश्य है ।

✧ इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए समय समय पर विभिन्न बहुआयामी गतिविधियों का संचालन किया जाएगा ।

✧ रचनात्मक और प्रेरक साहित्य का सृजन, प्रकाशन और प्रसारण का, इन गति-विधियों में प्रमुख स्थान होगा ।

✧ इस पत्रिका में समय-समय पर आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, आर्थिक, नैतिक, वैश्विक चेतना जागृत करने से सम्बन्धित विषयों पर मौलिक लेख तथा समाचार प्रकाशित किए जायेंगे ।

✧ **ओ३म्** परमपिता परमात्मा का निज नाम है । परमात्मा इस सृष्टि का नियन्ता है । सृष्टि से सम्बन्धित सभी विषयों का इसमें समावेश किया जाएगा ।

✧ **ओ३म्-सुप्रभा** का प्रकाशन पूर्णतया निजी स्तर पर किया जा रहा है । उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रति मास देश-विदेश के आर्य विद्वानों, लेखकों, उपदेशकों, कार्यकर्ताओं, प्रकाशकों एवं संस्थाओं को ओ३म्-सुप्रभा **निःशुल्क** भेजी जा रही है।

✧ लघु-पत्रिका के कारण, प्रकाशनार्थ लेख न भेजें ।

✧ सुधी पाठकों से निवेदन है कि वे अपने सुझाव भेजकर कृतार्थ करते रहें ।

ओ३म्-सुप्रभा

वैदिक सभ्यता-संस्कृति तथा राष्ट्रीय एकता की पोषक पत्रिका

रचना, स्थिति और प्रलय, कर्मों का फल जिस का विधान है ।
ओ३म् सुप्रभा ज्ञान अनुपम, सुरभित जिस से जन कुसुम प्राण है ।।

वर्ष–6, अंक–9 | मई 2013 | वैशाख
सृष्टि संवत् 1960853114 | विक्रमी संवत् 2070 | दयानन्दाब्द 190

ओ३म्–महिमा

सामवेद एवं पुष्पं ता अमृता आपः

–महात्मा नारायण स्वामी

अथ ये अस्य प्रत्यञ्चो रश्मयस्ता एवास्य प्रतीच्यो मधुनाड्यः सामान्येव मधुकृतः सामवेद एव पुष्पं ता अमृता आपः ॥

तानि वा एतानि सामान्येतꣳ सामवेदमभ्यतपꣳ स्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्य्यमन्नाद्यं रसोऽऽजायत ॥

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयतद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य कृष्णꣳ रूपम् ॥

छान्दोग्य उपनिषद् 3.3.1-3

अर्थ–और जो इस (आदित्य) की पश्चिम ओर की किरणें हैं वे ही इसकी पश्चिम ओर की मधुनाड़ियां है । साम ही शहद की मक्खियां हैं । सामवेद ही फूल है और वह अमृत रस पूर्ण हैं ॥

निश्चय उन इन सामों ने इसे सामवेद (रूप पुष्प) को तपाया उसके तपने से यश, तेज, इन्द्रियबल और भोज्य अन्न रूप रस प्रकट हुआ ॥

वह झरने लगा और उसने आदित्य का सब ओर से आश्रय लिया । निश्चय वह यह है, जो यह आदित्य का कृष्ण रूप है ॥ ●

तेरा जीवन संघर्षों की लम्बी एक कथा है,
मानवता का एक कथानक जिसमें भरी व्यथा है ।
तेरे मन की गहराई को जलनिधि ने कब आंका,
तेरा मस्तक नभ से ऊंचा, बुद्धि, ज्योति रथा है ॥

–दीपचन्द निर्मोही

ओ३म् महिमा

—डॉ० वेदप्रकाश

परमपिता परमात्मा, आप सभी के सुखधाम ।
सर्वोत्तम शुभ आपका, ओम् एक निज नाम ॥

ओम् नाम सर्वोत्तम पाया ।
वेद शास्त्र ऋषियों ने गाया ॥

तीन वर्ण जो इसमें आए ।
उनमें प्रभु-गुण सभी समाए ॥

जनक 'अकार' जगत् का पाया ।
पालक एक 'उकार' बताया ॥

अन्त 'मकार' जगत् संहारा ।
ओम् नाम ही सब से प्यारा ॥

तीन वर्ण ये जो जन जाने ।
वह मानव ईश्वर को माने ॥

सब जग-व्यापी ओम् बताया ।
तेज उसी का सब जग छाया ॥

रवि शशि तेज उसी से पाते ।
ईश-भक्त सब ध्यान लगाते ॥

ओम् प्रकाशित जग को करता ।
अपने भीतर सबको धरता ॥

वेद शास्त्र सभी गुण गाते ।
जग में सबसे श्रेष्ठ बताते ॥

ओम् सहारा उत्तम पाया ।
ज्ञान मोक्ष का गीत बताया ॥

अध्यक्ष, वैदिक धर्म संस्थान
एन० एच०-17 पल्लवपुरम्-2
मेरठ (उ०प्र०)

सम्पादकीय

ओ३म सुप्रभा का मई 2013 का अंक सुधी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए, हमें हार्दिक प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। इस अंक में हमने यथा पूर्व **'स्मरण-अनुकरण-नमन'** तथा **'आर्यसमाज चिन्तन-अनुचिन्तन'** के अन्तर्गत विद्वानों के प्रासंगिक लेख दिए हैं। हमने **'जन्मशती स्मरण'** के अन्तर्गत 'श्री सोमदेव वेदालंकार' तथा 'श्री जगदीश वेदालंकार' का संक्षिप्त परिचय दिया है। **'इतिहास के वातायन से'** के अन्तर्गत हमने आर्यसमाज अजमेर से प्रकाशित 'देश हितैषी' समाचार पत्र तथा आर्यसमाज चावड़ी बाजार दिल्ली द्वारा दिल्ली विश्वविद्यालय की कोर्ट के लिए नामित 'लाला देशबन्धु गुप्ता' सम्बन्धी समाचार दिया है। हमने इसी मास तीन वैदिक विद्वानों को खोया है-स्वामी इन्द्रदेवयति, प्रो० कैलाश नाथ सिंह और आचार्य रामनाथ वेदालंकार इन्होंने आर्यसमाज और वैदिक धर्म के प्रचार प्रसार एवम् उन्नयन के लिए आजीवन कार्य किया। हमने उनके लेख भी इसी अंक में दिए हैं। हम उनके प्रति अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं। गत अंकों के सम्बन्ध में हमें पाठकों के सत्परामर्श प्राप्त हुए हैं। हम तदनुसार अपने इस पत्र को संवारने का प्रयास करते हैं। वस्तुतः आर्य विद्वानों के सत्परामर्श ही हमें सम्बल प्रदान करते हैं।

इस समय देश में चारों ओर भय एवम् आतंक का वातावरण बना हुआ है। सर्वत्र भ्रष्टाचार, कदाचार, घोटालों एवं यौन-उत्पीड़न की घटनाएं सुनने को मिलती हैं। समाज में चोरी, डकैती, लूटपाट, हत्या, बलात्कार, अपहरण की घटनाएं प्रतिदिन हो रही हैं। मानवता का प्रायः लोप हो गया है। यदि इस दिशा में कदम न उठाया गया तो एक ऐसा समय आएगा जब सामाजिक समरसता पूर्णतः समाप्त हो जाएगी, भाई भाई का शत्रु हो जाएगा। राज्य-व्यवस्था भी सम्भवतः इन अत्याचारों को रोकने में असमर्थ हो जाएगी। अमीर-गरीब की खाई रात दिन चौड़ी होती जा रही है।

इन समस्याओं से छुटकारा पाने का एक ही उपाय सूझता है-**'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'**। इसका स्पष्ट अर्थ है कि सत्य ज्ञान के बिना छुटकारा नहीं हो सकता। परमात्मा सत्य है, जीवात्मा सत्य है, प्रवृत्ति भी सत्य हो। इन सब का ज्ञान आवश्यक है। इनका ज्ञान कैसे प्राप्त होगा, यह एक गूढ़ विषय हो सकता है। परन्तु इसे जानना अवश्यक है। प्रकृति कुछ नहीं करती परन्तु पदार्थों का दुरुपयोग ही हमारे दुःख व कष्टों का कारण बनता है। अभक्ष्य पदार्थों के सेवन से रजस् व तमस् गुणों में वृद्धि होती है। मनुष्य प्रकृति के जाल में फंस जाता है। इसका एकमात्र कारण है मिथ्या ज्ञान। मनुष्य सुख सुविधाओं को प्राप्त करने में लगा है। वह अपने जीवन के उद्देश्य को भूल

गया है । भौतिक उन्नति तो उसने कर ली है । भौतिक उन्नति के परिणाम स्वरूप आज विश्व में भ्रष्टाचार, बलात्कार, दुराचार, अनाचार, अत्याचार बढ़ रहे हैं । हमें प्रकृति के दु:खदायी बंधनों से छूटने के लिए तप, त्याग, योग, सत्संग एवं स्वानुभव की आवश्यकता है । अष्टांग योग इस दिशा में हमारे लिए सहायक हो सकता है । जब स्वाध्याय और सत्संग के द्वारा वैराग्य की उत्पत्ति होती है तब वह संसार की नि:सारता को समझने लगता है । उसकी वृत्तियां अन्तर्मुखी होकर परमानन्द की ओर आकृष्ट होने लगती हैं । यही जीवन का सदुद्देश्य है ।

यह स्थिति बहुत बाद की है । इससे पहले आवश्यक है कि मनुष्य 'मानव' बने । वह नैतिकता के पथ पर चले । सत्य और अहिंसा उसके जीवन के आधार हों । वह धार्मिक हो । धर्म के लक्षण हैं–अहिंसा, धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध ये गुण वस्तुत: मनुष्य को मानव बनाते हैं । ये गुण उसको देवत्व की श्रेणी में प्रतिष्ठापित करते हैं ।

आवश्यक है कि सांसारिक समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए हम व्यावहारिक जीवन में अहंकार को समाप्त कर दें और क्षमा भाव को अपनायें। हमारे लिए आवश्यक है कि हम साम्प्रदायिकता से दूर हों, देश और काल के बन्धन से मुक्त हों, सारा संसार हमारा हो । यत्र विश्वं भवति एकनीडम् । धर्मपरायणता से हम यह सब प्राप्त कर सकेंगे । एक समय था जब भारत सम्पूर्ण विश्व के लिए मार्गदर्शक था–

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशाद् अग्रजन्मन: ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवा: ॥

इतिहास के वातायन से--5

● **"देश हितैषी"**–आर्यसमाज अजमेर (राजस्थान) ने अपनी स्थापना के एक वर्ष पश्चात् ही वैशाख संवत् 1939 विक्रमी तदनुसार मई सन् 1882 से "देश हितैषी" मासिक का प्रकाशन आरम्भ किया था । उक्त पत्र राजस्थान से प्रकाशित होने वाला आर्यसमाज का प्रथम मासिक पत्र था । (आर्यसमाज अजमेर का इतिहास, पृष्ठ 67)

● दिल्ली विश्वविद्यालय की कोर्ट-चीफ कमिश्नर, दिल्ली के रजिस्ट्रार के अर्ध-शासकीय पत्रांक-153-सी/एजूकेशन दिनांक 24 अप्रैल सन् 1929 के सन्दर्भ में आर्यसमाज देहली, चावड़ी बाजार के प्रधान ने अपने पत्र दिनांक 4 मई सन् 1929 द्वारा आर्यनेता लाला देशबन्धु गुप्त, म्युनिसिपल कमिश्नर का नाम दिल्ली विश्वविद्यालय की कोर्ट के सदस्य के लिए मनोनीत किया गया था । [आर्यसमाज दीवानहाल, शताब्दी स्मारिका, पृष्ठ-64, 65]

उपनिषदों के सुभाषित

—स्व० पं० सत्यकाम विद्यालंकार

[पं० सत्यकाम विद्यालंकार का जन्म १९०५ में लाहौर में हुआ । आपकी शिक्षा गुरुकुल कांगड़ी में हुई । आप साप्ताहिक धर्मयुग और मासिक नवनीत के सम्पादक रहे। आपने संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी में विविध विधाओं में अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया । आपने साहित्यकार, लेखक और पत्रकार के रूप में ख्याति अर्जित की । प्रस्तुत लेख में आपने बताया कि उपनिषदों के सुभाषित प्रत्येक व्यक्ति को ज्ञान स्फूर्ति और प्रकाश देने वाले हैं । –सम्पादक]

उपनिषदों के आधार वेद ही हैं, किन्तु दोनों के प्रतिपाद्य विषय में कुछ भिन्नता है और दृष्टिकोण में भी अन्तर है ।

वेद मुख्यतः विश्वात्मपरक हैं, उपनिषदें आत्मपरक । वेद की ऋचाओं में जैसी महिमा विश्वात्मा की वर्णित है, उपनिषदों में लगभग वैसा ही गुणगान जीवात्मा को लक्ष्य करके किया गया है ।

वेद ने परमात्मा को लक्ष्य करके कहा है–

त्वं हि विश्वतोमुखः विश्वतः परिभूरसि ।

ऋक्० ४।३३।६४

हे सर्वतोमुख ! तू समस्त विश्व में सब ओर व्यापक है ।

सर्वा दिशः पुरुष आबभूव । ऋक्० १०।२।२८

पुरुष सब दिशाओं में व्याप्त है ।

अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भूः । ऋक्० १०।८।४४

विश्वात्मा अकाम है, धीर है, अमृत है, और स्वयम्भू है ।

उपनिषत्कार इन्हीं विशेषणों से आत्मा को विभूषित करते हुए कहते हैं–

यश्चायमस्मिन् मानुषे तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मा । यदममृतं ब्रह्मेदं सर्वम् ।

बृहदारण्यक २।५।१३

मानुष देह में जो तेजोमय, अमृतमय है, वही पुरुष है, वही आत्मा है।

मुण्डकोपनिषद् २।२।७ में कहा है–

आनन्दरूपममृतं यद्विभाति ।

यहां आनन्द और अमृत रूप आत्मा के ही स्वरूप का वर्णन है ।

कठोपनिषद् (२।३।१७) में भी इसी जीवात्मा को अमृतरूप कहा है–

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा, तं विद्याच्छुक्रममृतम् ।

आत्मा अमृतरूप है, यह प्रतिपदित करते हुए भी औपनिषदिक ऋषि उसे सभी रूपों में अमृत नहीं मानते । स्वभाव से वह अमृत है, किन्तु साथ ही वह भोग में अनुरक्त है ।

बृहदारण्यक (४।४।६) में कहा गया है।

काममय एवायं पुरुषः। किन्तु जब वह ब्रह्म में स्थित होता है, तब वह अमृतत्व पा जाता है ।

छान्दोग्य का सुभाषित है–

ब्रह्मतस्थो अमृतत्वमुपैति ।

आत्मा ब्रह्म में स्थित कैसे हों ? प्रश्न का उत्तर देते हुए उपनिषदों ने साधक को आत्मज्ञान की पूरी शिक्षा दे दी है ।

निम्नलिखित कुछ सुभाषित साधक को आत्मसाक्षात्कार की दिशा में आगे बढ़ने के लिए व्यावहारिक निर्देश देते हैं–

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा ।
सम्यज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ॥ मुण्डक० ३।१।५

सत्य, तप, ज्ञान, और ब्रह्मचर्य से आत्मा की प्राप्ति होती है और आत्मसाक्षात्कार होता है–

विद्यया विन्दतेऽमृतम् । केन० २।४

ज्ञान–प्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्, ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः । मुण्डक० ३।१।८

ज्ञान के प्रसाद से विशुद्धचित्त होकर मनुष्य ध्यान द्वारा निराकार के साक्षात्कार में समर्थ होता है ।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः । कठ० ३।२३

आत्मज्ञान उपदेशों से प्राप्त नहीं होता ।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः, तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् । कठ० ३।२४

जिसे यह चाहे उसके समक्ष ही यह अपने स्वरूप को अभिव्यक्त करता है ।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ।

कर्मयोग से मृत्यु-भय दूर कर ज्ञानयोग से अमृतत्व की प्राप्ति होती है।

अमृतत्व इसी जीवन में मिल जाता है या मृत्यु के बाद ? प्रश्न के उत्तर में केन-उपनिषद् (२।५) का यह सुभाषित बहुत उपयोगी है--

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति, न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।

यदि आत्मज्ञान से अमृतत्व यही प्राप्त हो जाता है, तो ठीक है । यदि यहां यह अज्ञात रहे तो अनर्थ ही अनर्थ है ।

आत्मज्ञानी एवम् अज्ञानी व्यक्ति में क्या अन्तर है ? इस प्रश्न का उत्तर निम्न सुभाषित देता है–

न वै देवा अश्नन्ति, न पिबन्ति ।
एतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ छान्दोग्य ३।६।१

ज्ञानी पुरुष भोग में प्रवृत्त नहीं होते, साक्षीमात्र रहते हैं । इसी से उनकी तृप्ति हो जाती है ।

संसार के भोगों को छोड़कर मनुष्य आत्मज्ञान जैसे नीरस विषय में रुचि क्यों ले ? प्रश्न का उत्तर भी उपनिषत्कार देते हैं ।

उत्तर है–

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः । कठोपनिषद् १।१।२७

मनुष्य लौकिक धन से ही तृप्त नहीं होता। अभिप्राय यह है कि आत्मज्ञान बिना उसे कभी सन्तोष न होगा । आत्मज्ञान पाना उसकी स्वाभाविक वृत्ति है ।

लौकिक धन-वैभव की अपेक्षा अध्यात्म ज्ञान एवं आत्मिक ज्ञान को गौरवास्पद बतलाते हुए भी उपनिषदों में लौकिक वैभव को सर्वथा त्याज्य अथवा हेय नहीं बतलाया । नितान्त वैराग्य का मार्ग ही आत्मदर्शन का एकमात्र मार्ग है–यह भी प्रतिपादित नहीं किया गया । हां, लौकिक मार्ग को प्रेय और आत्माभिमुख मार्ग को श्रेय अवश्य कहा है । इस सम्बन्ध में यह सुभाषित बहुत प्रसिद्ध है–

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस् ।
तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः॥ (कठोपनिषद् १, २, २)

प्रेम से श्रेय मार्ग की श्रेष्ठता निम्न सुभाषितों में भी अभिलक्षित होती है।

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा अमृतं गमय (बृहदारण्यक १, ३, २८)

मुख्यतः ज्ञान-मार्ग की श्रेष्ठता बतलाते हुए भी उपनिषदों में कर्म-मार्ग एवं पुरुषार्थ की उपेक्षा नहीं की गई । कर्मयोग की स्थापना के ये दो प्रसिद्ध मन्त्र उपनिषदों के ही हैं–

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥
(ईशोपनिषद् २)

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः ॥ (मुण्डक ३।२।४)
उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत । (कठ० ३।१४)
इन्द्र इच्चरतः सखा । (ऐतरेय० ७।१५)

इन्द्र=ईश्वर भी पुरुषार्थी व्यक्ति का ही मित्र बनता है । पुरुषार्थ या

(शेष पृष्ठ 11 पर)

गुरु विरजानन्द की कुटिया में प्रवेश

सुनकर यश गुरु विरजानन्द का, गुरु-ज्ञान-पिपासा हुई प्रबल ।
कुटिया भी उनकी मथुरा में, श्री दयानन्द पहुंचे अविकल ॥
थी जन्मभूमि पंजाब प्रान्त, कर्त्तारपुर निकटस्थ ग्राम,
कपूरथला के पास नदी, बेई के तीर ग्राम-स्थान ॥

थे भारद्वाज गोत्रज गुरुवर, अरु पिता श्री नारायणदत्त ।
था बालक मात्र पंचवर्षी, शीतला रोग से हुआ ग्रस्त ॥
बच गई जिन्दगी विरजानन्द, हो गये सर्वथा नेत्र हीन ।
ग्यारह वर्षों की आयु में, मात-पिता का हो गया अन्त ॥

दुख दिये भ्रात ने बहुत अधिक, अन्ततः चले घर तज अपना ।
ऋषिकेश गमन कर विरजानन्द, गायत्री मन्त्र किया जपना ॥
इक साल बाद में, एक दिवस, उसको आया विचित्र सपना ।
जल्दी छोड़ो विरजानन्द तट, यहां प्राप्त हो सकेगा कुछ ना ॥

चलकर कनखल पहुंचे उस थल, जहां रहें पूर्णानन्द स्वामी ।
प्रकरण ग्रन्थ कवि से पढ़कर, पुनि परमहंस पदवी थामी ॥
नहाकर गंगा में, सोरों में दोहराते गुरु विष्णु स्तोत्र ।
अलवर सम्राट् विनयसिंह ने, सुनकर अपने मन में ठानी ॥

होकर प्रसन्न गुरु-प्रतिभा से, ले गये साथ उनको अलवर ।
थी शर्त एक विरजानन्द की, पढ़ना होगा मुझसे मिलकर ॥
लग गये पाठ पढ़ने प्रतिदिन, आ गये समय पर घर गुरुवर ।
ना आ सके राजा एक दिन, हो गये विरक्त तुरत गुरुवर ॥

तज दिया राजगृह उस दिन ही, मुरसान राज की शरण गही ।
आ गये भरतपुर तदनन्तर, मथुरा नगरी में रहे कहीं ॥
विश्रामघाट यमुना-समीप, स्वामी ने चयन किया स्थल ।
लिया खोल वहां पर विद्यालय, चेले पढ़ने आ रहे वहीं ॥

था नियमित जीवन स्वामी का, उठना, जगना, स्वाध्याय नियत ।
स्नान-ध्यान-अभ्यास-योग, अध्यापन में रहते नित रत ॥
थी ग्रहणशक्ति इतनी अद्‌भुत, कण्ठाग्र ग्रन्थ थे बहुत अधिक,
सब पण्डित काशी नगरी के, रहते थे उनके सम्मुख नत ॥

उन-अनार्षग्रन्थों से थी अप्रीति, पहले इनको छुड़वाते थे ।
महाभाष्य-निरुक्त-निघण्टु को, शिष्यों को नित्य पढ़ाते थे ॥

थी आयु वर्ष इक्यासी की, संवत् था उन्निस सौ चौदह ।
थी खत्म क्रान्ति आजादी की, सब शान्त और अलसाते थे ॥

था मास कार्तिक दो सुदि थी, मथुरा में स्वामी हुए प्रकट ।
गुरुवर की कुटिया के दर पर, दयानन्द करी खटखट आहट ॥
दण्डी ने पूछा–'कौन व्यक्ति', उत्तरित–'दयानन्द सरस्वती,'
'व्याकरण पढ़े हो'- का उत्तर दे दिया-'पढ़ा हूं सारस्वत' ॥

पट खोला दण्डी स्वामी ने, दयानन्द घुसे कुटिया अन्दर ।
कर नमस्कार गुरु को सादर, ऋषि विनत बैठ गये धरती पर ॥
फिर कहा-'दयानन्द' अबतक तो, सीखे तुमने अन-आर्ष ग्रन्थ,
ऋषि-शैली सरल, मधुर-सुन्दर, उसका अनुकरण करो प्रियवर ॥

परित्याग करो अन-आर्ष रीति, तब आर्षग्रन्थ पाओगे पढ़ ।
पाना चाहो मुझसे शिक्षा, अन-आर्ष ग्रन्थ छोड़ो झटपट ॥
ऋषिवर सहमत हो गये तुरन्त, दण्डी जी का आदेश प्रथम ।
हम नहीं पढ़ाते सन्तों को, उनके भोजन का है संकट ॥

'महाराज पढ़ाना शुरू करो, भोजन का करलूंगा प्रबन्ध' ।
कह दिया-"कौमुदी सम्पादक", दयानन्द ! मुझे है नापसन्द ॥
कर इस पर जूते का प्रहार, निष्ठा ना इसमें रहे लेश ।
कर दिया श्री दयानन्द ने, पालन गुरुवर का सदुपदेश ॥

पुनि प्रथम पाठ प्रारम्भ किया, गुरुवर ने ऋषि दयानन्द का ।
कर लो एकत्र नगर भर से, तुम सारे मिलकर के चन्दा ॥
महाभाष्य ग्रन्थ की एक प्रति, दयानन्द वास्ते की खरीद,
था कुल खर्चा इकतीस रुपये, उस प्रति हेतु कर दिया अदा ॥

(पृष्ठ 9 का शेष)

कर्मयोग का सब से अधिक उपयोगी, मार्गप्रदर्शन उपनिषदों में सर्वप्रथम उपनिषद् के सबसे प्रथम सुभाषित में ही दे दिया गया है । इस एक मन्त्र के तीन सुषाषितों में ही कर्मयोग का निष्कर्ष आ गया है:–

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

सम्पूर्ण जगत् ईश्वर का घर है । उससे त्यक्त (प्रदत्त) वस्तुओं का ही भोग करो । उसने कर्मफल-स्वरूप जो कुछ दिया है, उस पर ही सन्तोष करते हुए आनन्दपूर्वक उसका सेवन करो । दूसरे को दिये गये धन को ललचायी नज़रों से न देखो ।

इन सुभाषितों के सहारे प्रत्येक व्यक्ति को नया ज्ञान, नयी स्फूर्ति और जीवन में नया प्रकाश मिल सकता है ।

वैदिक दृष्टि से संस्कृति के लक्षण

--स्व० स्वामी इन्द्रेव यति

[स्वामी इन्द्रदेव यति का जन्म पीलीभीत जिले के ग्राम जतीपुर में हुआ। आप आजीवन आदर्श गुरुकुल शाही जिला पीलीभीत के कुलपति तथा आचार्य रहे। आपने अखिल भारतीय आर्यसभा की स्थापना की तथा "आर्यराष्ट्र" नामक पत्र का सम्पादन किया। आपके प्रमुख ग्रन्थ हैं–ऋषि दयानन्द की जन्म तिथि, संस्कृति, समज व समाज,पाणिनीय शिक्षा की व्याख्या आदि। गतदिनों आप का निधन हो गया। हम आपके प्रति श्रद्धासुमन अर्पित करते हैं। –सम्पादक]

1. स्थिति

संसार में कोई भी काम करने के लिए प्रवृत्त हो तो प्रथम उसके प्रति जानकारी हो, दूसरे उसके अनुसार चलना, तीसरे फिर पहुंचना और चौथी स्थिति वहां पहुंच कर जैसा जाना था वैसा देखना है। इससे कम या अधिक स्थिति नहीं बनती है।

2. काण्ड

इस प्रकार स्थिति के चार काण्ड हैं : 1. जानना-ज्ञानकाण्ड (विद्ज्ञान), 2. चलना-कर्मकाण्ड (विद् लाभे), 3. पहुंचना-उपासना काण्ड (विद् सत्तायाम्), 4. देखना-विज्ञान काण्ड (विद् विचारणे)

(क) ऋग्वेद : इसमें ज्ञान काण्ड अर्थात् अग्नि आदि संसार के प्रत्येक पदार्थ का विवेचन अर्थात् स्तुति है।

(ख) यजुर्वेद : इसमें कर्मकाण्ड अर्थात् प्रार्थना है। प्राप्ति के उपाय को प्रार्थना कहते हैं, मांगने को नहीं-अर्थ्यते प्राप्यतेऽसावर्थः।

(ग) सामवेद : इसमें उपासना काण्ड अर्थात् निकट स्थिति हो जाना, पहुंचना है।

(घ) अथर्ववेद : इसमें विज्ञान काण्ड अर्थात् जैसा जाना था उसी में विचरण करने लग जाना है। परोक्ष ज्ञान और अथर्व प्रत्यक्ष ज्ञान है जिससे पर्व-संशय नहीं रहता, इसलिये यह विज्ञान है।

3. वेद

परमात्मा ने जड़-चेतन इस जगत् को बनाया है। चेतनों में मानव सर्वश्रेष्ठ है। मानवों को विधि निषेध के नियम बताये, उन्हीं का नाम वेद है (वेदोऽखिलो धर्ममूलम्) यह कानून सृष्टि के आदि में ही मानवों को दिया।

4. श्रुति

आदि सृष्टि में असंख्यात युवक और युवतियों को परमात्मा ने भू जात किया। उनमें से चार ऋषि सर्वोत्कृष्ट थे। उनके हृदय में वेदों का ज्ञान दिया।

उसको ऋषियों ने पांच वर्ष अन्तर्ध्वनि से सुना अतः उन्हें श्रुति कहते हैं ।

"आदि सृष्टि में सब मनुष्य बाल अवस्था में थे । उनको अशिष्टाप्रतिषिद्ध चेष्टा थी अर्थात् शासन व प्रतिषेध नहीं लगाये थे । ऐसी अवस्था आदि सृष्टि में पांच वर्ष चलती रही । फिर परम्परा से मनुष्यों को वेद ज्ञान दिया । (उपदेश मंजरी) ।"

5 परमात्मा का अन्तिम आदेश

पनायं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः ।
सहस्त्रशंसा उत ये गविष्टौ सर्वाइत् ताँ उपायाता पिबध्यै ।।

(अथर्व० का अन्तिम मन्त्र)

(अश्विना) हे स्त्री-पुरुषो (वां) तुम दोनों के लिए (तद् पनायं कृतम्) वह व्यवहार बता दिया जो (दिवोरजसः पृथिव्याः वृषभः) द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथिवी में सर्वश्रेष्ठ है । (उत ये गविष्टौ सहस्त्रशंसा) और जो गविष्टौ (इन्द्रियों की इच्छा में (सहस्त्रशंसः) सहस्त्रों प्रशंसाएं हैं । (तान् सर्वान् पिबध्यै उपयाता) उन सब को पान करने के लिए उनके पास जाओ । दुरिच्छाओं को नहीं, प्रशंसा वाली इच्छाओं का बाहर से नहीं, अन्दर प्रवेश करने के लिए प्रयत्न करो ।

6 संस्कृत

'सम्यक् प्रकारेण क्रियते यया सा संस्कृतिः'-सम्यक् प्रकार से जिसके द्वारा किया जाता है वह संस्कृति है । सहस्त्रशंसा ही संस्कृति है जिसको प्रथम विश्व ने वरण किया था-'सा प्रथमा संस्कृतिः विश्ववारा' (यजु0 7।14) । जिसको पालन करने का आदेश परमात्मा ने दिया है । संस्कृति एक है, वेद के साथ उसका आविर्भाव हुआ है । उसको जानने के लिए वेद में चार महावाक्य आये हैं 1. ऊँ, 2. नमस्ते, 3. स्वाहा, 4. इदन्न मम । जहां ये चारों महावाक्य नहीं हैं वहां विकृति है, विकृति को ही कल्चर कहते हैं । कुल में चली आई परम्पराओं का नाम कल्चर है । वह देश व सम्प्रदाय भेद से अनेक होती हैं ।

7. ओ३म्

'ओ३म् प्रतिष्ठ', (यजु०) ओम् में प्रतिष्ठित हो जाओ । अवतीति ओम्- ओ३म् वह परम शक्ति है जो रक्षा करती है । मानव को रक्षण चाहिये। रक्षण वही कर सकता है जो हमारे साथ सदा विद्यमान रहे । 'ओ३म्' हमारे साथ सदा विद्यमान है, सर्वव्यापक परमात्मा का मुख्य नाम है । वह सातवें, चौथे, पाताल, स्वर्गलोक में ही नहीं सर्वत्र व्यापक है । सत्यलोक से भी ऊपर उसका अनन्त लोक है । जितने भी सन्त आज तक हुए वे सत्यलोक पहुंचने का प्रयत्न करते रहे अनन्त लोक तक नहीं पहुंचे और वह पहुंच भी नहीं सकते, क्योंकि सन्त नाम मूर्ख का है, जो कहते हैं कि वेद अध्यात्म नहीं

है । 'ओ३म्' हमारे साथ सदा रह कर बुराइयों से (लज्जा, शंका रूप में) रोकने का संदेश देता है । परमात्मा हमारी रक्षा करता है । इसी प्रकार हम भी एक दूसरे की रक्षा में प्रयत्नशील रहें, यह संस्कृति का प्रथम लक्षण है ।

8. नमस्ते

नमः+ते, आपके या तेरे लिए नमः । नमः शब्द के अर्थ हैं (1) नमः नतो, (2) नमः आनुकूल्ये, (3) नमः वज्राय, (4) नमः अन्नाय अर्थात् बड़ों को झुकते रहें, सम्मान करते रहें, छोटों के अनुकूल रहें, शत्रुओं के लिए वज्र और अग्नि, राजकीय विभाग तथा प्राणियों के लिये नित्य बलिवैश्वदेव यज्ञ करते रहें ।

9. स्वाहा

सु+आह+आ=सुन्दर बोलें जिससे मर्यादा बनी रहे ।

स्व+आह+आ=अपने स्वत्व को अपना कहें ।

स्वा+आह+आ=अपनी वाणी को प्रयोग करें । जैसे देखा हो, सुना हो वैसा बोलें ।

स्वा+हा=अपनी कमाई का एक भाग समाज को अर्पण करें ।

सु आहेति वा, स्वं प्राहेति वा, स्वा वागाहेति वा, सुहुतं हविर्जुहोतीति वा।

10. इदन्न मम

'यह मेरा नहीं । **कस्यस्विद् धनम्**' (यजु०)-परमात्मा का धन है । '**ददितारः स्याम**' (यजु० 7.14)-देने वाले हों । जैसे मुझे परमात्मा ने दिया है वैसे हम भी देते रहें । यज्ञमय जीवन बनावें ।

इसी प्रकार ये संस्कृति के दश लक्षण हैं-इन आन्तरिक भावनाओं का नाम संस्कृति है । उसके अनुकूल बाह्य रूप में सभ्यता का जन्म होता है । जहां संस्कृति नहीं, वहां सभ्यता भी नहीं । शिखा, सूत्र, कौपीन, मेखला, दण्ड ये पांच चिह्न सभ्यता के हैं ।

जन्मशती : स्मरण - 6 सोमदत्त वेदालंकार

आपका जन्म अविभाजित भारत के बिलोचिस्तान (अब पाकिस्तान में) प्रान्त के क्वेटा शहर में 13 मई, सन् 1913 को हुआ था । आपके पिता का नाम श्री हीरालाल था । आपके शिक्षा-दीक्षा गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार में हुई । सन् 1934 में आपने वेदालंकार की उपाधि प्राप्त की । इस बीच आपने सन् 1932 में असहयोग आन्दोलन में भाग लेकर जेलयात्रा भी की । पुनः सन् 1942 में स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान हुए आन्दोलन में जेल यात्राएँ कीं । आप खादी ग्रामोद्योग कमीशन के सदस्य तथा सदस्य-सचिव रहे । आपने उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा हरियाणा प्रान्तों में खादी उत्पादन व बिक्री में महत्त्वपूर्ण सहयोग किया था ।

आर्यसमाज के कुछ क्रान्तिकारी कार्यक्रम

–स्व० प्रो० कैलाशनाथ सिंह

[प्रो० कैलाशनाथ सिंह का जन्म 30 जुलाई 1939 को हुआ । आप बाल्यकाल से ही कुशाग्र बुद्धि थे । आपकी भाषण कला अद्वितीय थी । आपने वर्षों तक उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान पद को सुशोभित किया । आप उत्तर प्रदेश सरकार में शिक्षामन्त्री रहे । आप संसद सदस्य भी निर्वाचित हुए । आपने वैदिक सार्वदेशिक का सफलता पूर्वक सम्पादन किया । आपने अनेक आर्य महासम्मेलन आयोजित किए । आप सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के भी प्रधान व मन्त्री रहे । आपका 9 मार्च 2013 को निधन हो गया । हम आपके प्रति श्रद्धावनत हैं । –सम्पादक]

महर्षि दयानन्द सरस्वती को विद्वद्जन क्रान्तिदर्शी ऋषि के रूप में स्वीकार करते हैं । क्रान्ति का अर्थ होता है-अज्ञानता, अन्धकार एवं कुव्यवहार को आमूल नष्ट करके नवीन सुखद व्यवस्था को प्रारम्भ करना । उषाकाल का सूर्य भी क्रान्तिदर्शी होता है । सौ वर्ष पूर्व महर्षि ने देश की वर्तमान कुसंस्कारी व्यवस्था को बदलने का प्रयास किया । वेद एवम् आर्य संस्कृति को ही मूलाधार रूप में स्वीकार किया । यह सत्य है कि सौ वर्षों में हमने ऋषिवर द्वारा प्रदत्त योजना के अनुसार बहुत कुछ प्राप्त किया । देश से ब्रिटिश साम्राज्य को उखाड़ फैकने का श्रेय ऋषिवर के क्रान्तिदर्शी विचारों को ही है ।

सौ शरत् तथा वसन्त व्यतीत हो गये । किसी राष्ट्र के इतिहास में यह समय अल्प होता है । ऋषिवर का कार्यक्रम तो विश्व के अन्धकार को आलोक में बदलने का था । हम इस अवसर पर चिन्तन करें तथा निश्चय करें कि आगामी वर्षों में कौन से रचनात्मक कार्य देश में तथा विदेशों में प्रारम्भ किए जाये ।

वेद प्रचार का कार्य सर्वप्रथम है । व्यस्त जीवन में चारों वेदों का पारायण जनता के लिए कठिन है । अतः प्रत्येक वेद के उच्च कोटि के शिक्षा तथा ज्ञानप्रद सौ मन्त्रों का संकलन अंग्रेजी और हिन्दी अनुवाद के साथ आकर्षक रूप में प्रकाशित किया जाय । मूल्य केवल लागत मात्र रहे । वेद-विषयक व्याख्यानों का आयोजन हो । देश और विदेश में वेदों में निहित वैज्ञानिक विचारों को संसार में अधिकाधिक प्रचारित किया जाय । यही परोक्ष रूप से वैदिक एकता आर्य-संस्कृति का प्रचार होगा ।

शिक्षा के क्षेत्र में आर्यसमाज ने बहुत कुछ किया है । इधर सरकार की नीतियों के कारण उच्च शिक्षा कुण्ठित हो रही है । प्रबन्ध-तन्त्र पंगु बन रहा है । अतः आर्यसमाज को सुशिक्षा पर बल देकर दयानन्द बाल मन्दिरों का ग्राम-ग्राम में जाल बिछा देना चाहिए ।

"कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तनाशनम्" में निहित भावना के अनुसार हमें देश में दयानन्द चिकित्सालयों की स्थापना की योजना बनानी चाहिए । वह भी बड़े नगरों में नहीं-जहां चिकित्सा सुविधा है बल्कि ग्रामीण आंचलों में । मेरे मस्तिष्क में योजना है कि अपने प्रान्त उत्तर प्रदेश में चार दयानन्द चिकित्सालय सौ-सौ शय्याओं के स्थापित किये जायें । पूर्वी उत्तर प्रदेश निर्धन एवं पिछड़ा प्रदेश है । महामारी से आक्रान्त रहता है । अतः प्रथम पूर्वी क्षेत्र में, दूसरा पर्वतीय क्षेत्र में, तीसरा बुन्देलखण्ड क्षेत्र में और चौथा पश्चिम के किसी उपयुक्त स्थान पर । साथ ही इन केन्द्रों पर चल-चिकित्सक दल रहेंगे जो ग्रामीण क्षेत्रों में सेवाकार्य करेंगे ।

धर्म-रक्षा अभियान पर विशेष बल दिया जाएगा और प्रयास होगा कि ईसाई तथा मुसलमानों के तबलीगी प्रचार का सामना किया जा सके । जो सम्भ्रान्त परिवार विगत सौ वर्ष में विधर्मी हो गये हैं, वे फिर वेद कल्पतरु के नीचे आकर राष्ट्र की मुख्य धारा में समरस हो जायें । यह बृहद् योजना है । तदर्थ हमें एक संगठन और कार्यकर्त्ता टोली का गठन करना पड़ेगा । प्रबल विचार-शक्ति ही क्रिया में बदल सकती है, ऐसा मेरा विश्वास है ।

गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली पर पूर्ण बल दिया जाय । गुरुकुलों की प्रतिष्ठा सरकार और समाज में पुनः की जाये । यही हमारा नैतिक प्रचार अभियान होगा ।

राष्ट्र में नवीन चेतना को जन्म देना होगा । गो-रक्षा, मद्य-प्रसार-निषेध, दहेज एवं छुआछुत-उन्मूलन, जातपांत-तोड़ना प्रमुख कार्यक्रम होंगे । ऐसे व्यक्तियों का, जो राष्ट्र के सांस्कृतिक विचारों से खेल कर चर्बी आदि की खाद्य पदार्थों में मिलावट में भागीदार हो रहे हैं, उचित बहिष्कार किया जाय । समाज-शत्रुओं को जनता दण्ड दे ।

विदेशों में अभी तक वही लोग 'आर्यसमाज के अनुयायी हैं, जो भारतीय मूल के हैं । प्रयास यह होना चाहिए कि विदेशों के मूल नागरिक वैदिक दर्शन की महत्ता को समझें और वैदिक सत्य को स्वीकार करें ।' ●

आर्य साहित्यसेवी विश्वकोश

दस खण्डों में प्रस्तावित 'आर्यसाहित्य सेवी विश्वकोश' का लेखन कार्य प्रगति पर है । सुविज्ञ पाठकों से विनम्र निवेदन है कि यदि उन्होंने अपना परिचय, चित्र तथा लेखन-कार्य का विवरण अभी तक नहीं भेजा है, तो कृपया अपना परिचय शीघ्र भेजें जिसमें नाम, चित्र, माता-पिता का नाम, पति/पत्नी का नाम, जन्मस्थान और जन्म तिथि (निधन स्थान और निधन तिथि केवल दिवंगत के लिए), जीवन के उल्लेखनीय प्रसंग, लेखन कार्य का विस्तृत परिचय आदि कृपया शीघ्र भेजें । *–सम्पादक*

वैदिक अर्थ व्यवस्था

–स्व० डॉ० रामनाथ वेदालंकार

[आचार्य डॉ० रामनाथ वेदालंकार का जन्म 7 जुलाई 1914 को बरेली जिले के फरीदपुर ग्राम में हुआ । आपकी शिक्षा दीक्षा गुरुकुल कांगड़ी में हुई । आप वहीं पर अध्यापक, प्राध्यापक एवम् आचार्य रहे । आप पंजाब विश्वविद्यालय के 'दयानन्द अनुसन्धान पीठ' के प्रोफेसर एवम् अध्यक्ष रहे । आप वेदों के उद्भट विद्वान् रहे हैं । आपने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया । आपको गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की सर्वोच्च उपाधि विद्यामार्तण्ड ससम्मान प्रदान की गई । 99 वर्ष की आयु में आपका निधन हो गया । हम आपको सश्रद्ध स्मरण करते हैं । –सम्पादक]

वैदिक विचारधारा के अनुसार मनुष्य को ऐश्वर्यशाली होना चाहिए । वेदों में स्थान-स्थान पर इस आशय के मन्त्र उपलब्ध होते हैं कि हम गौ, अश्व, हिरण्यादि अपार सम्पत्ति के भागी बनें । इन्द्र प्रभृति नामों द्वारा परमेश्वर, राजा आदि से प्रार्थनाएँ भी की गई हैं कि आप हमें प्रचुर धन-सम्पत्ति प्रदान कीजिए । पृथक्-पृथक् मनुष्य, उनसे मिलकर बने हुए समाज एवं राष्ट्र सभी को वेद की दृष्टि से धनी होना चाहिए । राष्ट्र में भुखमरी, गरीबी आदि का नाम भी न रहे, ऐसी वैदिक दृष्टि है । हम धनों के अधिपति बन जायें-"**वयं स्याम पतयो रयीणाम्**, ऋग्.10.121. 10", यह भावना वेदों में कूट-कूट कर भरी हुई है । इस भावना के द्योतक कतिपय मन्त्र नीचे दिये जा रहे हैं ।

भूरिदा भूरि देहिनो मा दभ्रं भूर्याभर ।
भूरि घेदिन्द्र दित्ससि । ऋग् 4.32.20

"हे इन्द्र, आप बहुत बड़े दानी हैं, अतः हमें बहुत दीजिए । हां सचमुच कम नहीं, बहुत दीजिए । हमें विश्वास है कि आप हमें बहुत ही देना चाहते हैं।

आ नो भर व्यञ्जनं गामश्वमभ्यञ्जनम् ।
सचा मना हिरण्यया । ऋग्. 8.78.2

"हे इन्द्र आप हमें व्यंजन दीजिए, गो, अश्व तथा अभ्यंजन दीजिए, और साथ ही सुवर्णमय अभीप्सित वस्तुएं दीजिए ।"

रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्त्रिणः ॥ ऋग्. 9.34.6

"हे सोम प्रभु ! आप हमारे लिए चारों दिशाओं से उमड़ कर आते हुए, सहस्त्रों ऐश्वर्यों से भरपूर धन के चार समुद्र प्रदान कर दीजिए ।"

गोभिष्टरेमाममतिं दुरेवां, यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनानि-अस्माकेन वृजनेना जयेम ।।
ऋग्० 10.42.10

हम गौओं के दूध से बुरे मार्ग पर ले जाने वाली कुमति को दूर कर लें, यव आदि अन्नों से क्षुधा को दूर भगा दें, और राजाओं की सहायता से तथा निज बल से समस्त धन सम्पत्तियों को प्राप्त कर लें ।

निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु, मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।
वसूनि नो वसुदा रासमाना, देवी दधातु सुमनस्यमाना ।।
अथर्व० 12.1.44

"अपने अन्दर धन के खजाने को, मणियों को, सोना-चांदी को धारण करने वाली भूमि माता हमें प्रसन्नतापूर्वक प्रचुर धन-सम्पत्ति देकर हमारी रक्षा करे ।"

पुष्टिं पशूनां परिजग्रभाहं, चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम् ।
पयः पशूनां रसमोषधीनां, बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात् ।।
अथर्व० 19.31.5

"मुझे पशुओं की पुष्टि प्राप्त हो, पारिवारिकजनों की पुष्टि प्राप्त हो तथा धन-धान्य प्राप्त हो । सविता एवं बृहस्पति प्रभु मुझे पशुओं का दूध तथा औषधियों का रस प्रदान करे ।"

सं सिञ्चामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम् ।
संसिक्ता अस्माकं वीरा ध्रुवा गावो मयि गोपतौ ।।
अथर्व० 2.29.6

"मैं अपने शरीर में गौओं के दूध को सींचता हूं, गो-घृत से बल और रस को प्राप्त करता हूं । हमारे वीर पुत्र भी इसी प्रकार गोदुग्ध से सिंचित रहें। मुझ गो-स्वामी के पास गौएं स्थिर बनी रहें ।"

इहैव ध्रुवा प्रतितिष्ठ शाले, अश्वावती गोमती सूनृतावती।
उर्जस्वती घृतवती पयस्वती-उच्छ्रयस्व महते सौभगाय ।।
अथर्व० 3.12.2

"हे मेरी हवेली, तू स्थिरतापूर्वक खड़ी रह । तेरे अन्दर अश्व हों, गौवें हों, प्यारी-सच्ची वाणी हो । तू अन्न से भरपूर, घृत से भरपूर तथा दूध से भरपूर होती हुई हमारे महान् सौभाग्य के लिए उन्नत होकर खड़ी रह ।"

उतेदानीं भगवन्तः स्याम, उत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य, वयं देवानां सुमतौ स्याम ।।
अथर्व० 3.16.4

"हम इस समय ब्राह्ममुहूर्त में धनवान् हों, सूर्योदय-काल में धनवान् हों, मध्याह्न में धनवान् हों और सूर्यास्त के समय भी धनवान् हों । प्रभु की सुमति हमें प्राप्त हो ।"

आर्यसमाज : चिन्तन-अनुचिन्तन - 36

आर्यसमाज : शिथिलता कैसे दूर हो

–स्व० श्री ओमप्रकाश त्यागी

आर्यसमाज में सर्वत्र इसकी वर्तमान शिथिलता व आपसी संघर्ष पर बेचैनी व चिन्ता है । सभी किंकर्तव्यविमूढ़ जेसी अवस्था में हैं । सभी के सम्मुख ये प्रश्न रुक-रुक कर आते हैं–क्या आर्यसमाज अपनी आवश्यकता समाप्त कर चुका है ? यदि नहीं तो आर्यसमाज में ऐसी शिथिलता क्यों है ? समाजों में आपसी संघर्ष का कारण क्या है ? यदि आर्यसमाज के कर्णधारों ने आर्य जनता की उक्त शंकाओं का शीघ्र समाधान कर उसका मार्ग प्रशस्त न किया तो इसका कुपरिणाम भयावह हो सकता है ।

आर्यसमाज की आवश्यकता है या नहीं ? इस प्रश्न का उत्तर यही है कि आर्यसमाज की आवश्यकता वर्तमान में पहले से कहीं अधिक है । देश का बुद्धिमान् देश-भक्त वर्ग अब यह हृदय से अनुभव करने लगा है कि महर्षि दयानन्द के आर्यसमाज द्वारा संचालित क्रान्ति की परमावश्यकता है, और वह आर्यसमाज की वर्तमान शिथिलता पर स्वयम् आश्चर्यचकित है । आर्यसमाज से दूर का सम्बन्ध भी न रखने वाले व्यक्ति आर्यसमाज के नेताओं से यही प्रश्न पूछते हैं कि आर्यसमाज अब चुप क्यों बैठा है ? वह आज अपने कर्तव्य को निभाता क्यों नहीं ?

देश में आर्यसमाज की आवश्यकता को लोग इसलिए अनुभव कर रहे हैं क्योंकि जातिवाद, छूत-छात, संकीर्ण साम्प्रदायिकता, क्षेत्रवाद, भाषावाद व प्रान्तवाद आदि समस्याएँ भारत की अखण्डता को चुनौती दे रही हैं और इनके कारण देश बड़ी तीव्र गति से विघटन की ओर अग्रसर हो रहा है । इन समस्याओं का समाधान आर्यसमाज के अतिरिक्त अन्य किसी भी संस्था के पास नहीं है । ये समस्याएँ सामाजिक हैं । इनका हल सामाजिक स्तर पर होना सम्भव है । कानून या डंडे से इनको कुछ समय के लिये दबाया जा सकता है, परन्तु सुलझाया नहीं जा सकता है ।

यदि आर्यसमाज की वर्तमान में आवश्यकता है तो फिर इसमें शिथिलता का कारण क्या है ? इसका उत्तर यही है कि दो कालों के मध्य सन्धिकाल में ऐसा ही होता है । आर्यसमाज द्वारा की जा रही क्रान्ति का एक दौर लगभग समाप्त हो गया है । यह अब अपने दूसरे दौर में पदार्पण करने वाला है । इसका पहला दौर बड़ा ही सफल रहा है । इसकी अधिकांश मान्यताओं को

आर्य (हिन्दू) जनता ने स्वीकार कर लिया है । जो व्यक्ति आर्यसमाज के सदस्य नहीं हैं वे भी आर्यसमाज द्वारा प्रचारित सिद्धान्तों को स्वीकार कर चुके हैं ।

दुर्भाग्यवश आर्यसमाज के नेताओं ने ऊपर लिखित तथ्य को नहीं पहचाना, और आर्यसमाज को ठीक समय पर नये लक्ष्य से नहीं बांधा । इसके कुपरिणाम स्वरूप आर्यसमाज लक्ष्यहीन अवस्था में पड़ गया है । लक्ष्यहीन अवस्था चाहे व्यक्ति में हो या संस्था में, उसका एकमात्र परिणाम आलस्य, प्रमाद, स्वार्थपरता, अस्थिरता, आपसी संघर्ष, आदि ही होता है । अतः अपनी लक्ष्यहीनता के कारण ही आर्यसमाज की वर्तमान दयनीय अवस्था है । इसे दूर करने का एकमात्र उपाय इसके सम्मुख लक्ष्यपूर्ति के लिए नया कार्यक्रम उपस्थित करना है ।

आर्यसमाज की वर्तमान लक्ष्यहीनता का दोषी इसका नेतृत्व है न कि आर्यजनता ? आर्यजन आज भी अन्यों की अपेक्षा अधिक सक्रिय, चरित्रवान् व पुरुषार्थी है । देश की धार्मिक व सामाजिक सुरक्षा के लिए जितना वे बेचैन, सक्रिय एवं सजग हैं उतना अन्य कोई नहीं है । आज भी यही भारत के पर्वतीय क्षेत्रों में उन विदेशी ईसाई मिशनरियों से टकरा रहे हैं जो अपने पैसे के बल पर भारत की निर्धन जनता को ईसाई बना रहे हैं ।

यहां यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या आर्यसमाज के सम्मुख महर्षि दयानन्द द्वारा प्रदत्त लक्ष्य समाप्त हो गया है, जिसके कारण इसे नया लक्ष्य देने की आवश्यकता है ? इसका उत्तर यह है कि आर्यसमाज का परम सौभाग्य है कि इसके संस्थापक ने इसे ऐसा पूर्ण लक्ष्य प्रदान कर दिया है कि इसे उसके बारे में चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं, परन्तु उक्त महान् लक्ष्य में से समयानुकूल अपने लिए कार्यक्रम चुनना और उन लक्ष्यों की प्राप्ति के निमित्त नये उपाय व साधनों का ढूंढना आर्य जनता तथा इसके नेताओं का कर्तव्य है । उदाहरणार्थ परम पिता परमात्मा ने मानव समाज के कल्याणार्थ समूचा ज्ञान वेद के रूप में प्रदान किया है, परन्तु यह व्यक्ति व समाज पर निर्भर करता है कि वह अपनी समस्याओं को देखते हुए उसमें से समाधान का मार्ग खोजे ।

आवश्यकता इस बात की है कि आर्यसमाज के विद्वान् विचारक कुछ दिन के लिए एकान्त में बैठकर आर्यसमाज की नई दिशा व गति देने के उपायों पर विचार कर एक पंचवर्षीय योजना बनायें । ●

प्रकाशक-मुद्रक-स्वामी-मूलचन्द गुप्त द्वारा सम्पादित, तथा वैदिक प्रेस, 995/51, गली नं०17, कैलाशनगर, दिल्ली-31 (फोन-22081646) से मुद्रित कराकर, ओम् प्रतिष्ठान, कुसुमालय, बी-1/27, रघुनगर, पंखा रोड, नई दिल्ली- 45, से प्रकाशित किया । न्यायक्षेत्र–दिल्ली ।